मुंशी प्रेमचन्द पर पाश्चात्य प्रभाव : एक अध्ययन

*डॉ. उमेश कुमार शर्मा

मुंशी प्रेमचन्द (1880–1936ई.) हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार कहानीकार हैं। उन्हें उपन्यास सम्राट एवं कहानी सम्राट की संज्ञा दी जाती है, कहा जाता है। प्रेमचन्द का आदर्शवाद सर्वविदित और सर्वस्वीकृत है। हिन्दी के प्रायः सभी समीक्षक एवं विद्वान उन्हें आदर्शवादी स्वीकार करते हैं। प्रेमचन्द का पहला प्रसिद्ध उपन्यास 'सेवासदन' प्रकाशित हुआ तब उसने साहित्य–जगत में एक सनसनी उत्पन्न कर दी थी। दूर–दूर तक उसकी अनुगूँज फैली थी। उसके बाद लगभग दो दशाब्दों में प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'गबन' और 'कर्मभूमि' जैसी उत्कृष्ट रचनाएँ दी जिनमें पाठकों को पहली बार अपने जीवन और अपने जनों की जीती जागती सच्ची तस्वीर मिली। पर इनमें कहीं भी प्रेमचन्द निर्मम यथार्थवादी नहीं दिखाई देते। जब प्रेमचन्द ने लिखना शुरू किया था (लगभग सन् 1905 में) तब उर्दू–हिन्दी में उपन्यास अपनी अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्था में था। वह या तो किस्सागोई और रम्याख्यानों में डूबा था, या ऊपरी मन से सुधार और नीति के उपदेशों में। वस्तुतः प्रेमचन्द ने अपनी चर्चा का तार यहीं से उठाया था और उनकी आरम्भिक कृतियाँ सुधारवाद से ही निर्मित हैं। 'प्रेमा', 'वरदान', और 'प्रतिज्ञा', ऐसी ही रचनाएँ हैं। मूलतः उर्दू में प्रकाशित उनकी 1905 की औपन्यासिक कृति 'देवस्थान–रहस्य' रोचक कथानक और लच्छेदार वर्णनों की परम्परा से तनिक भी भिन्न नहीं है। केवल एक ही तत्व उसमें कुछ भी है। चरित्रों की व्यक्तिगत विशेषताओं के प्रति लेखक की दृष्टि पैनी है। यही सूक्ष्म दृष्टि, जो यथार्थ के प्रति तटस्थ निष्ठा से उत्पन्न होती है, उन्हें प्रगति के पथ पर ले गई। अनन्तर उसमें जब अपने अनुभव और अपने परिवेश से प्राप्त ज्ञान एवं जीवन–दृष्टि का समावेश हुआ तभी वह आदर्शवाद रूपायित हुआ जिसे स्वयं प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का नाम दिया और जो उनका निजी वैशिष्ट्य था। इस वैशिष्ट्य ने ऐसी रचनाओं की सृष्टि की जिसने हिन्दी और उर्दू में पहली बार उपन्यास को गम्भीर विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया और उसके ऐसे पाठक उत्पन्न किये जो जीवन के प्रति मनन–चितन के लिए उनका अनुशीलन करते थे। अपने युग के वे सर्वप्रथम सफल उपन्यासकार थे और इसीलिये उसे 'प्रेमचन्द–युग' की संज्ञा दी गई है।

पर उनके युग को 'प्रेमचन्द–युग' कहने का एकमात्र कारण नही है। वे अपने युग के सच्चे प्रतिनिधि भी थे। प्रेमचन्द ने उपन्यास के लिये आवश्यक विस्तृत पट और विशालदृष्टि अपनी अथक निष्ठा से प्राप्त की थी। निम्न मध्यवर्ग के अभावग्रस्त परिवेश में पल–बढ़कर किशोरावस्था में ही उन्हें पारिवारिक दायित्व संभालना पड़ा और साधनों की हीनता के कारण अपना शैक्षिक अध्ययन बीच में ही छोड़ देना पड़ा था। पर उनमें साहित्य लेखन की लगन थी जो उन्होंने कभी नहीं छोड़ी। यही कारण है कि अध्यापकी करते समय में भी वे अध्ययन करते रहे और निरन्तर लिखते भी रहे। उनकी इस लेखनचर्या में पत्र–पत्रिकाओं का बड़ा महत्त्वपूर्ण योग रहा। उर्दू के 'जमाना' से लेकर 'माधुरी', 'मर्यादा' और फिर अपने निजी पत्र 'हंस' एवं 'जागरण' के लिये वे लगभग तीन दशाब्दों तक सामयिक और साहित्यिक टिप्पणियाँ, समीक्षाएँ, निबन्ध और अनूदित सामग्रियाँ तैयार करते रहे। इस कार्य ने उनकी लेखनी को तो निखारा ही, उनकी गद्य–शैली को व्यावहारिक और पुष्ट बनाया एवं देश की सामाजिक राजनीतिक हलचलों को आत्मसात् कर लेने का अवसर दिया। इससे उन्हें जो परिपक्वता एवं दृष्टि मिली उसी के सहारे वे अपने सतही सुधारवाद से आदर्शोन्मुख–यथार्थवाद तक पहुँचे। 'सेवासदन' इसी का परिणाम था। 'सेवासदन' ही नही उनकी परवर्ती रचनाओं में हम जीवन के प्रति उनकी दृष्टि को निरन्तर गहरा और विशद होते पाते हैं। इसका कारण यही है कि वे कोरे कथाकार अथवा उपन्यासकार न थे, उनके पास

एक विशिष्ट जीवन–दृष्टि थी जिसके आलोक में वे अपनी रचनाएँ ही नहीं, अपना और अपने स्वजनों–परिजनों एवं बन्धु–बान्धवों, इष्ट–मित्रों के जीवन का भी निर्माण करते थे। उस दृष्टि में अनुभव वास्तव उद्देश्य के आदर्श से घुल मिल गया था।

जब प्रेमचन्द का जन्म हुआ सन् (1880 में) तब भारतवर्ष नई शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता–संस्कृति के चाप के कारण अपनी दीर्घनिद्रा से अँगडाई लेकर जाग रहा था। प्रेमचन्द के सृजनात्मक व्यक्तित्व का कांग्रेस की गतिविधि से आजीवन बड़ा गहरा लगाव रहा। जब 1919 के आस–पास कांग्रेस के क्षितिज पर महात्मा गाँधी के क्रान्तिकारी आदर्शवाद का उदय हुआ तो प्रेमचन्द की लेखनी भी उसी ओर मुड गई। प्रेमचन्द गाँधीयुग के सशक्त स्वर बने। सत्य, अहिंसा, प्रेम, श्रम, सेवा, त्याग, देशप्रेम, साम्प्रदायिक ऐक्य और सरल जीवन आदि गुण जो भारतीय संस्कृति की परिभाषा देते थे, ये सभी गुण (तत्व) प्रेमचन्द के आदर्शवाद के अंग हैं और उनकी रचनाओं में ध्वनित–प्रतिध्वनित होते रहते हैं। उन्होंने आदर्शवाद के साथ समझौता नहीं किया।

प्रेमचन्द के समय भारतीय विद्यालयों में जो अंग्रेजी साहित्य पढ़ाया जाता था, उसमें आशावाद प्रमुख था। कार्लाइल और रस्किन, डार्विन और रूसो के नाम शिक्षितों के मन में बस गये थे। अमरीकी चिन्तक थोरो के सिद्धान्त और टाल्सटाय की जीवन दृष्टि ही आदृत थी। स्वयं गाँधीजी इन्हीं के विचारों को आत्मसात कर अग्रसर हुए थे। प्रेमचन्द ने अपनी पत्रकारिता में इन पर और पाश्चात्य कर्मवीरों के जीवन पर यथेष्ट प्रकाश डाला था। उनके जीवन से जो शिक्षाएँ निःसृत होती थी देश–प्रेम, परोपकार, त्याग, उत्सर्ग एवं अहिंसा– वे भारतीय जीवन–दर्शन के अनुरूप बैठती थी। प्रेमचन्द ने शैशव में ही उन्हें आत्मसात् कर लिया था।

प्रेमचन्द की युवावस्था में टाल्सटाय और रोमें रोलाँ अत्यन्त विख्यात हुए। प्रेमचन्द के उत्तरकाल में रोमें रोलाँ का बृहद उपन्यास 'ज्याँ क्रिस्तोफ' भी परिचित हो गया था। उपन्यास–लेखन जिसके जीवन का मूल धर्म हो वह भला इन महान् लेखकों से शिक्षा ग्रहण क्यों न करता। डिकेन्स के 'पिकविक पेपर्स' प्रेमचन्द को अत्यन्त प्रिय थे। उनकी व्यंग्य प्रतिभा के वे कायल थे, यद्यपि उनके विचार में सरशार के व्यंग्य अधिक प्रभावशाली थे।'[1] अपनी मृत्यु–शैय्या पर पड़े–पड़े जब वे और कुछ न कर पाते थे तब उन्होंने 'पिकविक–पेपर्स' पढ़ने की ही इच्छा प्रकट की थी। उसकी व्यंग्य–विनोद शैली ग्रहण कर स्वयं उन्होंने एक पात्र की सृष्टि की थी–मोटेराम शास्त्री– जो उनकी रचनाओं में बार–बार प्रकट होते रहे और जिनके कारण उन्हें कचहरी की झंझट में भी फँसना पड़ा। 'टाल्सटाय' की नीति कथाएँ भी उन्होंने पढ़ी थीं, उनका असर अपने लिखने में लिया था और गाँधीजी के रंगमंच पर आने के पहले उनमें से तेईस कहानियों का भारतीय परिवेश के अनुसार रूपान्तर करके 'प्रेम प्रभाकर' के नाम से छपा चुके थे। इनमें टाल्सटाय की लगभग सभी प्रसिद्ध नीति–कथाएँ आ गई थी – मनुष्य का जीवन–आधार क्या चीज है? (देट व्हेयरबाई मेन लिव) एक चिनगारी घर को जला देती है (नेग्लेक्ट अन फायर ऐण्ड इट विल नॉट बी क्वेन्चड़) प्रेम में परमेश्वर (व्हेयर लव इज देयर गॉड इज़ आल्सो) बाललीला (चिल्ड्रेन में बी वाइजर देन देयर एल्डर्स) एक आदमी को कितनी भूमि चाहिए? (हाउ मच लैण्ड डज़ ए मैन रिक्वायर?) अण्डे के बराबर दाना (द ग्रेन देन वाज लाइक ऐन एग) धर्मपुत्र (द गॉडसन) आदि।..... प्रेम, दया, क्षमा, परोपकार, अहिंसा, त्याग, अपरिग्रह, आत्मशुद्धि की शिक्षा उन्होंने भी टाल्सटाय से पाई थी। उसी प्रभाव में 'सेवामार्ग' उपदेश जैसी नीति–कथाएँ भी उन्होंने लिखी जिनमें सेवा को ही, परोपकार को ही सबसे बडी सिद्धि बताया गया है।'[2] इसी प्रकार 'टाल्सटाय के प्रभाव में अन्तःकरण की शुद्धि के सिद्धान्त की ओर मुंशीजी का झुकाव तब तक काफी स्पष्ट आकार ले चुका था। 'टाल्सटाय–भक्त गाँधीजी, जिन्होंने भी टाल्सटाय की.....वैसी ही कहानियों का अनुवाद अपनी भाषा गुजराती में किया था, उसी सिद्धान्त को एक अधिक व्यापक धरातल पर, राष्ट्रीय स्तर पर लागू कर रहे थे। मुंशीजी को उसे अपनाने से भला क्या मुश्किल होती।'[3] यह प्रेमचन्द की पूर्वार्द्ध चर्या का प्रमुख स्वर है। 'गाँधी और टाल्सटाय का इतना गहरा असर मुंशीजी के मन पर है कि जादू की छड़ी घुमाते ही वह सारे पढ़े–लिखे लोग..... जो इस समाज व्यवस्था को पूरी तरह स्वीकार करके खुद अर्थ पिशाच बन चुके हैं और जिनके बारे में मुंशीजी की शंकाओं का अन्त नहीं है, उनका

हृदय–परिवर्तन हो जाता है।'[4] आगे चलकर अमृतराय निष्कर्ष देते हैं: कर्म के क्षेत्र में गाँधीजी और उनके (प्रेमचन्द) बीच गुरू–शिष्य का सम्बन्ध था, विचार के स्तर पर, टाल्सटाय के नाते गुरू–भाई का।'[5]

डिकेन्स और टाल्सटाय के अतिरिक्त तीसरा पाश्चात्य उपन्यासकार थैकरे था जिसका 'वैनिटी फेअर' प्रेमचन्द ने सन् 1903 में पढ़ा था।[6] स्वाभाविक ही माना जायेगा कि डिकेन्स, थैकरे और टाल्सटाय की रचनाओं का न्यूनाधिक प्रभाव प्रेमचन्द जैसे संवेदनशील और सौद्देश्य कलाकार पर पड़ जाये। डिकेन्स और थैकरे दोनों ही चरित्र प्रधान उपन्यासों के लिखने में सिद्धहस्त थे और प्रेमचन्द के उपन्यास भी उसी रूपबन्ध के थे। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं कि उनकी कला में कुछ तत्व इन कलाकारों से आ मिले हों। पर प्रभाव, बहुधा अप्रत्यक्ष और अज्ञात रीति से पडता है। अतः यह हिन्दी समीक्षा की अपरिपक्व अवस्था का ही सूचक है कि प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' को 'वैनिटी फेअर' की नकल कहकर प्रेमचन्द के प्रति अत्यन्त अपमानजनक शब्दावली का प्रयोग किया गया। विवश होकर प्रेमचन्द ने अपनी सफाई प्रस्तुत की और यह सिद्ध किया कि उनकी रचनाएँ मौलिक हैं। यदि प्रेमचन्द से कहा जाता कि उनकी रचनाओं में कुछ पाश्चात्य लेखकों का प्रभाव आ गया है तो कदचित् असत्य न होता और वे इसे सहज स्वीकार भी करते क्योंकि उन्होंने न केवल पश्चात्य साहित्य पढ़ा था, वरन् उससे प्रचुर अनुवाद भी किया था और प्रायः उन्हीं कृतियों का अनुवाद किया था जो उनके सृजनात्मक व्यक्तित्व के अनुकूल थी। इनमें अनातोले फ्रांस का उपन्यास 'ताइस'[7] और गाल्सवर्दी के नाटक 'स्ट्राइफ' और 'सिल्वर बौक्स' भी सम्मिलित थे। विक्टर ह्यूगो का 'ले मिजराब्ल' पढ़कर वे इतने मुग्ध हो गये थे कि उन्होंने अपने मित्र को पत्र लिखाः 'पहले यह बताइये कि विक्टर ह्यूगो की मशहूर किताब 'ले मिजराब्ल' का उर्दू तर्जुमा हुआ है या नहीं। अगर हुआ है तो कहाँ मिल सकता है। अगर नही हुआ है तो मैं इस काम में जुटना चाहता हूँ।'[8] इसी प्रकार उन्होंने हाल केन का 'इटर्नल सिटी' और राइडर हैगर्ड का उपन्यास 'शी' भी पढ़ा था। जैसा कि जैनेन्द्र कुमार ने कहा है: 'मैं यह देखकर विस्मित हुआ कि आधुनिक साहित्य की प्रवृत्ति से वह कितने घनिष्ठ रूप में अवगत हैं। योरोपीय साहित्य में जानने योग्य उन्होंने जाना है। जानकर ही नहीं छोड़ दिया, भीतर से उसे पहचाना भी है और फिर विवेक से छानकर आत्मसात किया है।[9] पर 'बैनिटी फेअर' के इस प्रसंग में अथवा 'प्रेमाश्रम' पर टाल्सटाय के 'रिज़रैक्शन' की छाया अथवा 'कायाकल्प' पर 'शी' की छाया के प्रसंग में उन पर अनुकरण का जो आरोप लगा वह नितान्त अनुचित था। जो प्रभाव आत्मसात् होकर आता है वह मौलिकता को पुष्ट ही करता है, उसे नष्ट नहीं करता और जैसा कि प्रेमचन्द ने कहा, उनकी रचनाओं में यदि ऐसी छायाएँ दिखाई दी तो केवल इसीलिए कि वे अपनी वस्तु जीवन से लेते थे और जीवन सर्वत्र एक है। यदि उन दिनों समीक्षा विवेक विकसित हो गया होता तो प्रेमचन्द को ऐसा त्रास न भोगना पड़ता। जिस पर प्रेमचन्द अपनी भूमि और उसके यथार्थ जीवन से इतने बँधे थे कि अन्य किसी स्त्रोत से वे ऐसा कोई तत्व ले ही नहीं सकते थे जो उनका अपना न हो गया हो। वे अपने उपन्यासों की रूपरेखा कितनी सजगता से तैयार करते थे इसका एक उदाहरण 'कायाकल्प' के प्रसंग में अमृतराय ने प्रस्तुत किया है।[10] उससे यह प्रमाणित है कि प्रेमचन्द की दृष्टि अपने सामने फैले वास्तविक जीवन पर ही टिकी रहती थी और जैसा कि स्वयं प्रेमचन्द ने कहा था 'रंगभूमि' मुख्यतः राजनीतिक उपन्यास है जबकि 'वैनिटी फेअर' एक सामाजिक उपन्यास है।[11] उन्होंने यह भी बताया था कि उसमें सोफिया का चरित्र निर्मित करते समय उनकी दृष्टि में एनी बेसेण्ट थी।[12] सूरदास एवं विनय सम्भवतः गाँधी एवं नेहरू के प्रतिरूप थे। अतएव अनुकरण का अभियोग नितान्त निराधार था।

प्रेमचन्द पाश्चात्य उपन्यास के अधीत विद्वान थे और उन्होंने जो कुछ पढ़ा था उसे आत्मसात कर लिया था। विशेषतः शैशव में और किशोरावस्था में उन्होंने जो कुछ पढ़ा था वह उनके व्यक्तित्व का ही अंग बन चुका था। इतना ही नहीं; वे नवोदित लेखकों को भी प्रोत्साहित करते रहते थे कि वे पश्चिम की उत्कृष्ट रचनाएँ अवश्य पढ़ें। '23 मार्च, 1932 को अपने खत में मुंशी प्रेमचन्द जी ने उपेन्द्रनाथ अश्क को लिखा–पढ़ने के लिए लाइब्रेरी से मनोविज्ञान की एक किताब ले लो, सकूली कोर्स की किताब नहीं, अभी एक किताब निकली है 'द ऐस्पेक्ट्स आफ द नोवेल', इस विषय पर अच्छी पुस्तक है। मतलब सिर्फ यह है कि इंसान उदार विचार वाला हो जाय, उसकी संवेदनायें व्यापक हो जायँ। डाक्टर टैगोर के साहित्यिक और दार्शनिक निबन्ध बहुत ही आला दर्जे के हैं। रोमें रोलाँ का विवेकानन्द जरूर पढ़ो। उनकी 'गाँधी' भी

पढ़ने के काबिल है। डाक्टर राधाकृष्णन की दर्शन सम्बन्धी किताबें, टाल्सटाय का 'व्हाट इज़ आर्ट' वगैरह किताबें जरूर देखनी चाहिए।'[13] और गाँधीजी की भाँति प्रेमचन्द जी अपने परामर्श पर पहले स्वयं ही आचरण करते थे। अतएव, पश्चिम के जो भी गुण उन्हें अपनी कला दृष्टि के लिए उपयोगी लगे वे उन्होंने अचेतन रूप में ही अपना लिये। उदाहरण के लिए, 'गबन' में दैवसंयोगों की घटा सम्भवतः हार्डी का ही प्रभाव है। उसकी वस्तु और उसका रूपबन्ध सब प्रेमचन्द का निजी है, भारतीय जीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब है। प्रेमचन्द का 'गोदान' हिन्दी का पहला और कदचित् अद्यावधि सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी उपन्यास है। 'गोदान' का ग्रामीण अंश का नाटकीय रूप हठात् हार्डी का ध्यान दिलाता है। 'गोदान' का यथार्थवाद टाल्सटाय से दूर हटकर गोर्की का ध्यान दिलाता है, यद्यपि गोर्की का यथार्थवाद अधिक निर्मम और निर्भ्रान्त था। पर इन दोनों से बढ़कर, 'गोदान' की कारूणिक मानवता हमें एलेक्जैण्डर कुप्रिन के विख्यात उपन्यास 'यामा' की याद दिलाती है। गोर्की का 'मदर' और कुप्रिन का 'यामा' दोनों प्रेमचन्द ने पढे थे। 'यामा' से प्रेमचन्द इतने प्रभावित हुये थे कि अपने भाषणों तक में उसका उल्लेख करते थे। अतः यह सम्भव है कि होरी का करूणापूर्ण चित्रण 'यामा' की अनुगूँजों से निर्मित हुआ हो, क्योंकि जिन दिनों वह उन्होंने पढ़ा था उन दिनों 'गोदान' की रचना अग्रसर हो रही थी। पर 'गोदान' अपने समग्र रूप में प्रेमचन्द के नवीन और मौलिक वैशिष्ट्य का प्रतिफल है और स्थायी प्रभाव छोडता है। अज्ञेय ने ठीक ही लिखा है:... जहाँ तक मानवीय सहानुभूति का लेखक–मानव और विश्व–मानव के साथ एकात्मकता का प्रश्न है, प्रेमचन्द इस बात में आगे थे। उनकी दृष्टि अधिक उदार थी, इतर मानवों के साथ उनकी संवेदना का सूत्र अधिक सजीव और स्पन्दनशील था।..... बुद्धि–वादी के लिए यह खतरा सदा बना रहता है कि उसकी मानवीय संवेदना का स्त्रोत कहीं सूख न जाए, मानव के लिए उसका दर्द एक रूखी अनुकम्पा का रूप न ले ले। प्रेमचन्द की और हमारी दृष्टि में ऐसा ही अन्तर आ गया है। प्रेमचन्द को मानवता से प्रेम था, हम अधिक से अधिक मानवता की प्रगति मात्र चाहते हैं।'[14]

***व्याख्याता**

हिन्दी विभाग

एस.एस. जैन सुबोध, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जयपुर

संदर्भ ग्रन्थ सूची:–

1. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही : अमृतराय : पृष्ठ 102
2. वही : पृष्ठ 165
3. वही : पृष्ठ 217
4. वही : पृष्ठ 222
5. वही : पृष्ठ 230
6. वही : पृष्ठ 385
7. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही : अमृतराय : पृष्ठ 192
8. वही : पृष्ठ 352
9. प्रेमचन्द : एक कृती व्यक्तित्व : जैनेन्द्र कुमार : पृष्ठ 57–58
10. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही : अमृतराय : पृष्ठ 369–373
11. वही : पृष्ठ 338
12. वही : पृष्ठ 387
13. वही : पृष्ठ 491–492